LL.B. 1st Sem. Paper-1 Law of Contract

Question 1. प्रस्थापना से आप क्या समझते हैं ? एक विधिक प्रस्ताव और प्रस्थापना के आवश्यक तत्व तथा प्रस्ताव के आमंत्रण में अन्तर बताइये।

Answer. साधारण बोलचाल की भाषा में जब एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के सामने अपनी इच्छा को व्यक्त करता है तो उसे प्रस्ताव कहते हैं। प्रस्ताव की विधिक परिभाषा भारतीय संविदा अधिनियम की **धारा 2 (क)** में दी गयी है। "जब एक व्यक्ति दूसरे के सामने कुछ करने या न करने की इच्छा को अभिव्यक्त करता है और ऐसा करते समय उसका यह आशय रहता है कि दूसरा व्यक्ति उसकी इच्छा के प्रति अपनी सहमति प्रकट करे तो यह कहा जा सकता है कि उसने प्रस्ताव रखा।"

धारा 2 (क) में दी गई परिभाषा एवं न्यायिक व्याख्या के अनुसार एक वैध प्रस्ताव के निम्नलिखित आवश्यक तत्व होते हैं–

1. एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति के सामने इच्छा को व्यक्त किया जाना,
2. इच्छा कुछ करने या करने से प्रविरत रहने की हो,
3. व्यक्त इच्छा के प्रति, दूसरे व्यक्ति की सहमति प्राप्त करने का आशय होना चाहिए।

इच्छा को व्यक्त करने के तीन तरीके हैं–

1. मौखिक 2. लिखित एवं 3. विवक्षित अर्थात् आचरण द्वारा ।

अभिव्यक्त एवं विवक्षित प्रस्ताव (Express and implied proposal)-

जब कोई प्रस्ताव मौखिक या लिखित रूप में किया जाता है तो ऐसे प्रस्ताव को अभिव्यक्त प्रस्ताव कहते हैं एवं जब प्रस्ताव का अनुमान व्यक्ति के आचरण से लगाया जाता है तो उसे विवक्षित प्रस्ताव कहते हैं।

सामान्य एवं विशिष्ट प्रस्ताव (General and particular proposal)-

जब प्रस्ताव सार्वजनिक तौर पर रखा जाता है तो उसे सामान्य प्रस्ताव कहते है। जब प्रस्ताव किसी व्यक्ति विशेष के सामने ही रखा जाता है तो उसे विशिष्ट प्रस्ताव हैं। शुरू–शुरू में सामान्य प्रस्ताव को प्रस्ताव नहीं मानते थे। वीक्स बनाम टाइबाल्ड ((1605)74ई0 आर0 982) में अंग्रेजी न्यायालय ने प्रतिपादित किया था । कि प्रस्ताव किसी विशिष्ट एवं निश्चित व्यक्ति को ही किया जा सकता है किन्तु सुप्रसिद्ध वाद लेडी कारलिल बनाम कार्बोलिक स्मोक बाल कं0

(1893क्यू0 बी0 256) में यह स्पष्ट कर दिया गया कि प्रस्ताव सामान्य रूप का भी हो सकता है। जब प्रस्ताव सार्वजनिक तौर पर रखा जाता है तो उसकी स्वीकृति कोई भी व्यक्ति दे सकता है।

<u>चिरगामी प्रस्ताव (Continuing proposal)-</u> जब प्रस्ताव किसी विशिष्ट कार्य तक ही सीमिति नहीं रहता बल्कि निरन्तर कार्यो के लिए किया जाता है, तो इसे चिरगामी प्रस्ताव कहते हैं।

<u>प्रस्ताव एवं प्रस्ताव का आमन्त्रण (Offer and invitation to offer)-</u>

यद्यपि भारतीय संविदा अधिनियम में प्रस्ताव व प्रस्ताव के आमन्त्रण में कोई अन्तर नहीं बताया गया है, फिर भी दोनों को एक मानना गलत है। जबकि प्रस्ताव के आमन्त्रण में सम्पूर्ण इच्छा व्यक्त नहीं होती है। व्यक्ति संविदा करने की रूचि व्यक्त करता है और लोगों को आमन्त्रित करता है।

निम्नलिखित प्रस्ताव के आमन्त्रण माने जाते हैं–

1. नीलामी का विज्ञापन,
2. दुकान के प्रदर्शन कक्ष (शो रूम) में वस्तुएँ रखना। बाटा के जूतों की दुकान के शो रूम में जूते रखे जाते हैं और उस पर कीमत भी लिखी रहती है, किन्तु दुकानदार को वही जूता बेचने के लिए मजबूर नहीं किया जा सकता है।
3. पुस्तक विक्रेता द्वारा पुस्तक सुची (Catalogue) देना ही प्रस्ताव का आमन्त्रण है।
4. होटल के बैरे द्वारा खाद्य सामग्री की सूची (minu) देना ही प्रस्ताव का आमन्त्रण है।
5. रेलवे समय सारिणी (Railway time table) को डेन्टम बनाम ग्रेट नार्दर्न रेलवे (1865) में अग्रेंजी न्यायालय ने प्रस्ताव माना।
6. निविदा (टेण्डर) भी प्रस्ताव के लिए निमन्त्रण माना जाता है। टेण्डर का आदेश देने के पूर्व इसका प्रतिसंहरण किया जा सकता है।

<u>प्रस्ताव तथा प्रस्ताव के लिए निमंत्रण में अन्तर</u>

<u>प्रस्ताव</u>	<u>प्रस्ताव के लिए निमंत्रण</u>
1.प्रस्ताव किसी निश्चित बात को करने	1. जबकि प्रस्ताव के लिए निमन्त्रण में

या न करने के लिए किसी दूसरे व्यक्ति प्रस्ताव करने हेतु निमन्त्रित किया जाता

से इस आशय से किया जाता है कि उसको है तथा यह आशा की जाती है कि दूसरा अनुमति प्राप्त हो जाय। प्रस्ताव करें।

2.प्रस्ताव किसी निश्चित व्यक्ति को किया 2. प्रस्ताव के लिए निमन्त्रण निश्चित व्यक्ति जाता है। को न होकर सर्व साधारण के प्रति होता है

3.प्रस्ताव दो व्यक्तियों के मध्य विधिक 3.प्रस्ताव के लिए निमन्त्रण में किसी से

सम्बन्ध स्थापित करने के उद्देश्य से प्रस्ताव करवाने का आशय होता है।

किया जाता है।

<u>Question 2.</u> स्वीकृति किसे कहते है? यह कौन कर सकता है? स्वीकृति कब से वैध होती है? स्वीकृति की संसूचना से सम्बन्धित शर्तों की विवेचना कीजिए।

<u>Answer. स्वीकृति (Acceptance)-</u> 'स्वीकृति' शब्द से तात्पर्य किसी बात को स्वीकार करना या प्रस्ताव से सहमत होना है। **संविदा अधिनियम की धारा 2 ख के अनुसार** " जब कि वह व्यक्ति, जिससे प्रस्थापना की जाती है उसके प्रति अपनी अनुमति या सहमति संज्ञात करता है । तो यह कहा जाता है कि प्रस्थापना प्रतिग्रहीत हुई। इस प्रकार प्रस्थापना के प्रति अनुमति या सहमति व्यक्त करना ही प्रति ग्रहण या स्वीकृति है।"

<u>प्रस्ताव तथा स्वीकृति एक दूसरे के लिए बारूद की गाडी तथा जलती हुई दियासलाई है–</u>

प्रतिग्रहण संविदा सूचना का द्वितीय चरण है जिसके अभाव में प्रस्थापना, प्रस्थापना ही रह जाती है तथा संविदा निर्माण का कार्य अग्रसर नहीं हो सकता । प्रतिग्रहण की बात तभी उत्पन्न होती है जब एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति से प्रस्थापना की गयी हो । अगर प्रस्थापना हुई है तो प्रतिग्रहीत होने पर उसके रूप में परिवर्तन हो जाता है। तब प्रस्थापना,प्रस्थापना नहीं रह जाती यदि प्रतिग्रहीत कर ली जाए।

<u>स्वीकृति या प्रतिग्रहण कब पूर्ण होती है?–</u> इस विन्दु पर अंग्रेजी विधि तथा भारतीय विधि में भेद है। अंग्रेजी विधि में प्रतिग्रहण प्रस्तावक तथा प्रतिग्रहीता (स्वीकृतिकर्त्ता) दोनों के लिए एक समय पूरी होती है। परन्तु भारतीय विधि में

संविदा अधिनियम की धारा 7 के अनुसार (स्वीकृति) प्रतिग्रहण प्रस्तावक के लिए तथा (स्वीकृतिकर्त्ता) प्रतिग्रहीता के लिए भिन्न–भिन्न समयों पूरी होती है।

<u>प्रस्ताव कब पूर्ण होता है?–</u> संविदा अधिनियम की धारा 4 के अनुसार प्रस्ताव प्रस्तावक तथा स्वीकृतिकर्त्ता (प्रतिग्रहीता) के लिए एक ही समय पूरा होता है और वह समय है, जब प्रस्ताव की सूचना (प्रतिग्रहीता) स्वीकृतिकर्त्ता की जानकारी में आती है। प्रतिग्रहीता को जब प्रस्ताव की जानकारी हो जाती है। उसके पश्चात् प्रस्तावक प्रस्ताव को वापस नहीं ले सकता । उसके पश्चात प्रस्तावक प्रस्ताव को वापस नहीं ले सकता।

<u>उदाहरण–</u> क, दिनांक 12.01.1996 को अपनी कार 50,000/– में बेचने का प्रस्ताव ख को पत्र द्वारा पेषित करता है। यह पत्र 15.01.1996 को ख को प्राप्त होता है तथा ख पत्र को 15.01.1996 को पूरी होती है। क अपना प्रस्ताव 15.01.1996 से पूर्व वापस ले सकता है उसके पश्चात नहीं । इस प्रकार 15.01.1996 को पत्र ख को प्राप्त हो जाने के पश्चात् जिस समय पत्र ख पढता है उस समय से पूर्व क अपना प्रस्ताव वापस ले सकता है । उसके पश्चात् प्रस्ताव यदि स्वीकार कर लिया जाता है तो वह एक पूर्ण तथा वैध प्रस्ताव हो जाता है।

<u>Question 3.</u> प्रतिफल को परिभाषित कीजिए तथा विधिक प्रतिफल के आवश्यक तत्वों को बताइयं। क्या प्रतिफल के करार भी वैध होता है? समझाइये।

<u>Answer.</u> सामान्यतया प्रत्येक व्यक्ति को अपने वचन का पालन करना चाहिए परन्तु वचन पालन के लिए एक प्रलोभन या मूल्य हो तो वचन पालन की सुनिश्चितता बढ जाती है। इसीलिए वचन का पालन करने हेतु किसी प्रलोभन की आवश्यकता होती है। साधारणतः इसे ही प्रतिफल कहते हैं।

विभिन्न विद्वानों ने प्रतिफल को अपने ढंग से परिभाषित किया है " प्रतिफल ऐसे मुआवजे को कहते हैं जो संविदा का एक पक्षकार दूसरे पक्षकार को देता है। " ब्लैक स्टोन (Black Stone)

"प्रतिफल ऐसे मूल्य को कहते हैं जिसके बदले में दूसरे पक्षकार का वचन प्राप्त किया जाता है " और इस प्रकार से मूल्य के लिए दिया गया वचन प्रवर्तनीय होता है। – पोलक

"प्रतिफल वह वस्तु है जिसका विधि वी दृष्टि में कुछ मूल्य है... उससे वादी को कुछ लाभ हो सकता है अथवा प्रतिवादी का कुछ अहित हो सकता है"।–न्यायमूर्ति पेटर्सन

"विधि के अभिप्राय में, मूल्यावन प्रतिफल उसे कहते हैं जिसमें कोई अधिकार, हित, लाभ या सुविधा एक पक्षकार को मिले या दूसरा पक्षकार कोई हानि, अहित या उत्तरदायित्व ले या लेने का वचन दे या किसी कार्य (लाभ,हानि,या दायित्व) से प्रविरति रहने का वचन दे " **न्यायमूर्ति लश क्यूरी बनाम मीसा (1875)** एक्सचेकर में। इस प्रकार भारत में धारा 2 (घ) के अनुसार एक वचन या प्रतिज्ञा या संविदा के लिए प्रतिफल (1) भूतकालिक (Past), (2.) वर्तमानकालिक (present), या (3) भविष्यकालिक (future) हो सकता है।

प्रतिफल के आवश्यक तत्व (Essential elements of consideration) -

एक वैध प्रतिफल के निम्नलिखित आवश्यक तत्व होते है–

1. प्रतिफल वचनदाता की इच्छा पर दिया गया हो– संविदा अधिनियम की धारा 2 (घ) के अनुसार प्रतिफल एक कार्य, कार्य करने से विरत रहना (कार्य न करना), अथवा कार्य करने या कार्य न करने के वचन के रूप में हो सकता है। इस प्रकार इस धारा के अनुसार यदि वचनग्रहीता (स्वीकृतिकर्त्ता) ने वचनदाता (प्रस्तावक) के वचन के बदले कोई कार्य किया है या कोई कार्य करने से विरत रहा है, अथवा कोई कार्य करता है या कोई कार्य करने से विरत रहता है या कोई कार्य करने या किसी कार्य से विरत रहने का वचन देता है तो यह सब प्रतिफल होता है ।
2. प्रतिफल वचनग्रहीता (स्वीकृतिकर्त्ता) द्वारा अथवा किसी अन्य व्यक्ति द्वारा दिया जा सकता है– भारत में संविदा अधिनियम की धारा 2(घ) के अनुसार प्रतिफल वचनग्रहीता (स्वीकृतिकर्त्ता) या वचनग्रहीता की ओर से किसी अन्य व्यक्ति द्वारा भी दिया जा सकता है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि एक व्यक्ति जो संविदा का पक्षकार नहीं है या संविदा से अपरिचित है, वह व्यक्ति भी प्रतिफल दे सकता है। इसे दूसरी तरह से कह सकते हैं कि जिस व्यक्ति ने प्रतिफल नहीं दिया है या जो व्यक्ति प्रतिफल से अपरिचित है,वह भी संविदा को लागू करवा सकता है, यदि वह संविदा का पक्षकार हो।
3. प्रतिफल भूतकालीन, वर्तमान तथा भावी हो सकता है –
   भूतकालीन प्रतिफल– भूतकालीन प्रतिफल वह है संविदा होने से पूर्व ही दे दिया जाता है। भूतकालीन प्रतिफल तथा वर्तमान प्रतिफल में अन्तर यह है कि भूतकालीन प्रतिफल में कार्य वचन से पूर्व किया गया होता है अर्थात् वचनदाता के वचन से पूर्व प्रतिफल दे दिया जाता है जब कि वर्तमान प्रतिफल में कार्य वचन के उत्तर में किया जाता है। वर्तमान प्रतिफल में

वचन (संविदा) की शर्तों को पूरा करने हेतु कार्य किया जाता है (प्रतिफल दिया जाता है)।

<u>Question 4.</u> सभी संविदाएॅ, करार होती हैं परन्तु सभी करार संविदा नहीं होती है" उपर्युक्त कथन के सन्दर्भ में एक विधिक संविदा के आवश्यक तत्वों की व्याख्या कीजिए।

<u>Answer.</u> भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 2(ड.) करार पद को परिभाषित करती धारा 2(ड.) के अनुसार " हर एक वचन और ऐसे वचनों का हर एक संवर्ग, जो एक–दूसरे के लिए प्रतिफल हो,करार है।"

और भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 2(ज) के अनुसार सिर्फ वही करार संविदा है जो विधि द्वारा प्रवर्तनीय है। तथा एक करार विधि द्वारा तभी लागू करवाया जा सकता है ज बवह करार संविदा अधिनियम की धारा 10 के अन्तर्गत एक वैध करार हेतु प्रतिपादित सभी आवश्यक शर्तो (तत्वों) को पूरा करता है। वे शर्ते (तत्व) निम्न हैं–

(1) करार सक्षम पक्षकारों द्वारा किया गया हो।

(2) करार में सक्षम पक्षकारों की सहमति स्वतन्त्र हो।

(3) करार के अन्तर्गत प्रतिफल वैध हो।

(4) करार वैध उददेश्य के लिए किया गया हो।

(5) करार को संविदा अधिनियम की किसी धारा के अन्तर्गत अवैध घोषित न किया गया हो।

<u>(1) करार सक्षम पक्षकारों द्वारा किया गया हो–</u> एक वैध करार की उत्पत्ति हेतु दो पक्षकार आवश्यक हैं। उसमें से एक पक्षकार प्रस्ताव करता है तथा दूसरा पक्षकार उस प्रस्ताव पर अपनी स्वीकृति प्रदान करता है। संविदा अधिनियम की धारा 11 के अनुसार एक अवयस्क व्यक्ति, एक विकृत चित्त व्यक्ति या ऐसा व्यक्ति जिसे विधि द्वारा संविदा करने के लिए अक्षम घोषित किया गया है,संविदा करने हेतु सक्षम पक्षकार नहीं माना जाता ।

<u>(2) करार में सक्षम पक्षकारों की सहमति स्वतन्त्र हो–</u> जब दो व्यक्ति एक ही विषय–वस्तु के बारे में एक मस्तिक के होते हैं तो यह कहा जाता है कि वे उस विषय– वस्तु पर सहमत हुए। एक करार को संविदा अधिनियम की धारा 14 स्वतन्त्र सहमति की परिभाषा देती है। इस धारा के अनुसार स्वतन्त्र सहमति तब

कही जाएगी जब यह (1) उत्पीडन (coercion) के द्वारा न प्राप्त की गई हो, (2) जब यह असम्यक असर (प्रभाव) के अन्तर्गत प्राप्त न की गई हो, (3) जब यह कपट(fraud) द्वारा प्राप्त न की गई हो, (4) जब यह दुर्व्यपदेशन (misrepresentation) द्वारा न प्राप्त की गई हो तथा (5) जब यह भूल (mistake) के अन्तर्गत प्राप्त न की गई हो।

<u>(3) करार के अन्तर्गत प्रतिफल वैध हो–</u> कोई भी करार जो बिना प्रतिफल के है, धारा 25 के अनुसार शून्य होता है। परन्तु धारा 10 के अनुसार एक करार को संविदा के रूप में लागू करवाने के लिए प्रतिफल का वैध होना आवश्यक है। एक करार का प्रतिफल तभी वैध होगा जब वह (1) विधि द्वारा वर्जित न हो, (2) प्रतिफल किसी विधि को निष्फल करने का उददेश्य न रखता हो (3) प्रतिफल कपट पूर्ण न हो, (4) प्रतिफल किसी व्यक्ति के शरीर या सम्पत्ति को क्षति पहुॅचाने के उददेश्य से न किया गया हो, (5) प्रतिफल का उददेश्य अनैतिक न हो जैसे व्यभिचारपूर्ण मैथुन, (6) प्रतिफल का उददेश्य लोक नीति के विरूद्ध न हो।

<u>(4) करार का उददेश्य वैध हो –</u> करार के लिए यदि प्रतिफल देने का उददेश्य वैध नहीं है तो यह कहा जायगा कि करार अवैध उददेश्य के लिए किया गया है जैसे प्रतिफल का उददेश्य आदि (1) बाजी लगाना, (2) किसी संविदा को निष्फल करना, (3) या कपट करना, (4) किसी को मारने–पीटने या किसी की सम्पत्ति को क्षति पहुॅचाने का उददेश्य, (5) व्यभिचारपूर्ण मैथुन या जारकर्म करने का उददेश्य, (6) घूस देना।

<u>(5) करार किसी धारा के अन्तर्गत शून्य घोषित न हो–</u> संविदा अधिनियम की कुछ धाराओं में कतिपय करारों को स्पष्ट रूप से शून्य (void) घोषित किया गया है तो ऐसे करार विधि द्वारा प्रवर्तनीय नहीं होते अतः उन्हें संविदा नहीं कहा जा सकता । (1) विवाह के अवरोधार्थ करार (धारा 26), (2) व्यापार के अवरोधक करार (धारा 27), (3) विधिक कार्यवाहियों के अवरोधक करार (धारा 28), (4) अनिश्चितता के कारण शून्य करार (धारा 29),(5) बाजी करार या पंद्यम तौर के करार (धारा 30)।

<u>प्रत्येक संविदा एक करार है परन्तु प्रत्येक करार संविदा नहीं होता है–</u> किसी भी करार के लिए एक प्रस्ताव तथा स्वीकृति का मिलन आवश्यक है। जब एक पक्षकार दूसरे पक्षकार से कुछ करने की अपनी इच्छा प्रकट करे तथा दूसरा पक्षकार इच्छानुसार उस कार्य को करने के लिए अपनी स्वीकृति दे तो करार का जन्म हो जाता है। परन्तु जैसा कि संविदा अधिनियम की धारा 2 (ज) प्रावधान करती है कि प्रत्येक करार संविदा नहीं है सिर्फ वही करार संविदा माने जायेगें जो विधि द्वारा प्रवर्तनीय हों अर्थात् जिन्हें विधि द्वारा लागू करवाया जा सके। सिर्फ वह करार

विधि द्वारा प्रवर्तनीय है जो धारा 10 में प्रतिपादित सभी आवश्यकताओं को पूरा करते हों अन्य करार संविदा नहीं होंगे।

<u>Question 5.</u> सम्मति की परिभाषा दीजिए। सम्पति स्वतंत्र कब कही जाती है, अर्थात् सम्मति को दूषित (प्रभावित) करने वाले कारको का वर्णन कीजिए।

<u>Answer.</u> <u>सम्मति **(Consent)**</u>– सम्मति की परिभाषा संविदा अधिनियम की धारा 13 में दी गई है। इस धारा में दी गई परिभाषा के अनुसार जब कि दो या दो से अधिक व्यक्ति एक–सी ही बात पर एक से ही भाव में करार करते हैं, तब उनके बारे में कहा जाता है कि वे सम्मत हुए हैं।

अर्थात संविदा के पक्षकारों की पहचान विषयवस्तु एवं संव्यवहार की प्रकृति के सम्बन्ध में दोनों पक्षकारों के मन में किसी प्रकार की विभिन्नता का नहीं होना ही "सम्मति" है। अतः वास्तविक सहमति वह है जिसमें प्रत्येक पक्षकार एक ही बात पर एक ही भाव में सहमत हों, अर्थात् वे मतैक्य (**Ad-Idem**) हों।

कुण्डी बनाम लिण्डसे, (1878) 3 अपील केस 459, 38 एल0 टी0 573 के वाद में ब्लेनकर्न नामक व्यक्ति जो एक धोखेबाज था, ब्लेनकिरोन नाम की विख्यात फर्म के नाम से, अपने नाम की समानता का फायदा उठाते हुए लिण्डसे एण्ड कम्पनी को कुछ माल का आदेश दिया। आदेश पर उसने हस्ताक्षर इस प्रकार किये कि वह ब्लैनकिरोन एण्ड कम्पनी जैसा प्रतीत होते थे । कम्पनी ने उस आदेश को ब्लेनकिरोन एण्ड कम्पनी का आदेश समझ कर माल भेज दिया। ब्लेनकर्न ने वह माल एक सद्भवी क्रेता कुन्डी एण्ड कम्पनी के हाथ बेच दिया और विक्रेता को माल के मुल्य का संदाय नहीं किया। यह अभिनिर्धारित किया गया कि संविदा करने वाले पक्षकारों के सम्बन्ध में भूल के कारण ब्लेनकर्न तथा विक्रेंता में एक सी ही बात पर एक से भाव में कोई करार न होने के कारण संविदा शून्य थी और ब्लेनकर्न को माल में कोई स्वत्व प्राप्त नहीं हुआ था जिसे वह कुण्डी एण्ड कम्पनी को बेच सके।

<u>स्वतन्त्र सम्मति **(Free-consent)-**</u> भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 10 के अनुसार- "सभी करार संविदा हैं यदि वे पक्षकारों की स्वतन्त्र सहमति से किये जाते है"। "दूसरे शब्दों में कह सकते है कि मान्य संविदा में सम्मति ही नहीं बल्कि स्वतन्त्र सहमति होनी चाहिये।

धारा 14 में यह परिभाषित किया गया है कि स्वतन्त्र सहमति किसे कहते हैं। इसके अनुसार ऐसी सम्मति को स्वतन्त्र सम्मति कहा जाता है जिसमें सम्मति–

(i)उत्पीडन , (ii)असम्यक् असर, (iii)कपट (iv) मिथ्या–व्यपदेशन, (v) भूल से न करायी गयी हो।

इस प्रकार जब कोई व्यक्ति बिना किसी बाधा अथवा अवरोध के कार्य करता है, अपनी सम्मति देता है तब उसे स्वतंत्र सम्मति कहा जाता है। प्रपीडन, असम्यक असर, कपट, मिथ्या व्यपदेशन एवं भूल ही ये बाधायें हैं।

प्रत्येक संविदा से यह उपधारणा की जाती है कि पक्षकारों की सहमति स्वतन्त्र हो। यदि पक्षकार ऐसा न होने का दावा करता है तो सिद्धि भार उस पर है जो कि उसके बारे में कहता है।

बिरला जूट मैन्युफैक्चरिंग कम्पनी बनाम स्टेट ऑफ एम0पी0, (2002) 9 एस0 सी0 सी0 667 के वाद में बाध्यता के अन्तर्गत दिये गये परिवचन की मान्यता का उल्लेख किया गया है। कम्पनी का तर्क था कि बाध्यता से प्रभावित होकर परिवचन दिया गया था। अतः अमान्य है। न्यायालय का अभिमत था कि अपीलार्थी ने स्वेच्छा एवं स्वतन्त्रतापूर्वक वचन दिया था। अतः अपील निरस्त कर दी गई । अपीलार्थी वाध्यता की स्थिति को सिद्ध न कर सका।

Question 6. "अवस्यक के द्वारा की गयी संविदा शून्य करणीय नही बल्कि प्रारम्भ से शून्य होती है।" इस कथन को निर्णीतवादों की सहायता से स्पष्ट कीजिए।

Answer. विधिमान्य संविदा की अनिवार्य शर्तें– भारतीय संविदा अधिनियम 1872 की धारा 10 में एक विधि मान्य संविदा के गठन के लिए निम्नांकित शर्तों को पूरा करना आवश्यक होता है –

(i)करार का होना– प्रत्येक संविदा करार होती है अतः करार के लिए प्रस्थापन, प्रतिग्रहण तथा प्रतिफल का होना आवश्यक होता है तथा करार दो पक्षकारों के मध्य होता है अतः संविदा में भी दो पक्षकारों का होना विवक्षित है।

मे0 गेमन इण्डिया लि0 बनाम पंजाब स्टेट इलेक्ट्रीसिटी बोर्ड, ए0 आई0 आर0 1997 पंजाब एण्ड हरियाण 43 के वाद में निर्णीत किया गया कि करार का अन्तिम अर्थात् निष्कर्षात्मक होना आवश्यक है। क निविदा प्रेंषित करता है। ख द्वारा संदाय की शर्ते तय हो जाने की शर्ते पर निविदा स्वीकार कर ली जाती है। क संदाय की संशोधित शर्तें भेजता है। अभी क एवं ख के बीच करार अन्तिम हुआ नहीं माना जायेगा।

(ii)<u>सक्षम पक्षकारों का होना –</u> करार सक्षम पक्षकारों द्वारा किया गया होना आवश्यक है। सक्षम होने के लिए व्यक्ति को–

(i)प्राप्तवय अर्थात् वयस्क होना,

(ii)स्वस्थचित्त होना एवं

(iii)संविदा करने के लिए किसी विधि के अधीन अनर्ह नहीं होना।

प्रमुख वाद **मोहरी बीबी बनाम धर्मोदास घोष, (1903)** 30 आई0 ए0 144, 30 कल0 539में प्रिवी कौंसिल ने सदा के लिए यह तय कर दिया कि अवयस्क की संविदा पूर्णरूपेण आरम्भतः शून्य है न कि शून्यकरणीय।

(iii)<u>सम्मति स्वतंत्र होनी चाहिए–</u> जब दो व्यक्ति एक ही विषय वस्तु के बारे में एक मस्तिष्क होते हैं तो यह कहा जाता है कि वे उस विषय वस्तु पर सहमत हुए। एक करार को संविदा बनाने के लिए यह आवश्यक है कि उनके मध्य सहमति स्वतन्त्र हो। ऐसी सम्मति स्वतंत्र होती हैः यदि वह–

(i)प्रपीडन द्वारा नहीं की गई हो ।

(ii)असम्यक् असर के अन्तर्गत न प्राप्त न की गई हो।

(iii)कपट द्वारा प्राप्त न की गई हो।

(iv)दुर्व्यपदेशन द्वारा प्राप्त न की गई हो ।

(v)भूल के अधीन नहीं दी गई हो।

(iv)<u>विधिपूर्ण उददेश्य –</u> धारा 10 के अनुसार एक करार को संविदा के रूप में लागू करवाने के लिए प्रतिफल का वैध होना आवश्यक है। एक करार का प्रतिफल तभी वैध होगा जब वह–

1. विधि द्वारा वर्जित न हो,
2. प्रतिफल किसी विधि को निष्फल करने का उददेश्य न रखता हो
3. प्रतिफल कपटपूर्ण न हो,
4. प्रतिफल किसी व्यक्ति के शरीर या सम्पत्ति को क्षति पहुॅचाने के उददेश्य से न किया गया हो,
5. प्रतिफल का उददेश्य अनैतिक न हो जैसे व्यभिचारपूर्ण मैथुन,

6. प्रतिफल का उददेश्य लोक नीति के विरूद्ध न हो,

(v) विधिपूर्ण उददेश्य – प्रत्येक करार किसी उददेश्य की पूर्ति के लिए किया जाता है जिसका विधिपूर्ण होना आवश्यक है। कोई उददेश्य विधिपूर्ण होता है, यदि वह–

1.विधि द्वारा निषिद नहीं हो,

2.वह इस प्रकृति का न हो कि यदि उसे अनुज्ञात किया जाये तो वह किसी विधि के उपबन्धों को विफल कर देगा।

3.कपटपूर्ण न हो,

4.अनैतिक या लोक नीति के विरूद्ध नहीं हो।

(vi)अभिव्यक्तत शून्य घोषित नहीं किया जाना– किसी करार को अभिव्यक्त रूप से शून्य घोषित नहीं किया गया होना चाहिये। इस अधिनियम के अधीन निम्नांकित करारों को शून्य घोषित किया गया है–

1.प्रतिफल के बगैर किया गया करार।

2.भूल के अधीन किया गया करार।

3.विवाह अवरोध करार।

4.व्यापार में अवरोध करार

5.विधिक कार्यवाहियों में अवरोध पैदा करने वाला करार,

6.अनिश्चित अर्थ वाला करार।

7.बाजी का करार

(vii) लिखित एवं अनुप्रमाणित होना–जहॉ पर संविदा का भारत में प्रवृत्त किसी विधि द्वारा लिखित एवं अनुप्रमाणित किया जाना अपेक्षित हो वहॉ उसका लिखित एवं अनुप्रमाणित एवं रजिस्ट्रीकृत होना अनिवार्य माना गया है–

1.अवधि–बाधित ऋण के संदाय का करार।

2.स्थावर सम्पत्ति के अन्तरण का करार।

3.किसी विवादग्रस्त मामले को मध्यस्थता के लिए सुपुर्द करने का करार आदि।

<u>Question 7.</u> नैराश्य के सिद्धान्त से आप समझते है? निर्णीतवादों की सहायता से व्याख्या कीजिए।

<u>Answer.</u> संविदा अधिनियम की धारा 56 असम्भवता के सिद्धान्त को प्रतिपादित करती है। इस सिद्धान्त के अनुसार यदि पश्चात्वर्ती परिस्थितियों में परिवर्तन के कारण संविदा का पालन असम्भव हो जाता है तो संविदा शून्य हो जाती है तथा संविदा के पक्षकार संविदा के पालन के दायित्व से मुक्त हो जाते हैं या कभी–कभी संविदा ऐसी होती है कि संविदा का पालन असम्भव होता है। ऐसी दशा में भी संविदा शून्य मानी जाती है तथा संविदा के पक्षकार संविदा के पालन के लिए बाध्य नहीं होते।

1. <u>प्रारम्भिक असम्भाव्यता</u> **(Initial impossibility)-** संविदा अधिनियम की धारा 56 का प्रथम पैरा प्रारम्भिक असम्भाव्यता से सम्बन्धित है। इस पैरा के अनुसार, वह करार जो ऐसा कार्य करने के लिए हो जो स्वतः असम्भव हो, शून्य हैं। धारा 56 से जुडा उदाहरण क इसे स्पष्ट करता है। इसके अनुसार क , ख से जादू से गुप्त निधि का पता लगाने का करार करता है यह करार शून्य है क्योंकि करार करते समय यह स्वतः स्पष्ट है कि जादू से किसी गुप्त निधि का पता लगाना असम्भव है। यहॉ प्रारम्भ से ही करार के पालन की असम्भवता स्पष्ट है। प्रारम्भिक असम्भवता भौतिक या विधिक दोनों प्रकार की हो सकती है।

2. <u>पश्चात्वर्ती असम्भाव्यता</u> **(Subsequent impossibility)-** सही अर्थों में उन्हीं मामलों में नैराश्य का सिद्धान्त लागू होता है जहॉ संविदा या करार करते समय संविदा या करार का पालन सम्भव होता है परन्तु पश्चात्वर्ती परिस्थितियों में इस प्रकार परिवर्तन होता है कि करार या संविदा का पालन असम्भव हो जाता है।
3. <u>भौतिक असम्भाव्यता -</u> धारा 56 से जुडा उदाहरण ख पश्चात्वर्ती असम्भवता को स्पष्ट करता है। क और ख आपस में विवाह करने की संविदा करते है। विवाह के लिए नियत समय के पूर्व क पागल हो जाता है। अतः क के लिए विवाह करना असम्भव हो जाता है। यहॉ संविदा के पालन से पूर्व क तथा ख दोनों स्वस्थ चित्त के थे परन्तु संविदा करने की तिथि को उनमें से एक पागल हो जाने के कारण संविदा का पालन असम्भव हो जाता है अतः संविदा प्श्चात्वर्ती असम्भवता के कारण शन्यू हो जायेगी।

1. **केल बनाम हेनरी 1903 2 के0 वी0 740 का वाद** प्रमुख है।
2. **गंगासरन बनाम रामचरन रामगोपाल ए0 आई0 आर0 1952 सु0 को0 09** नामक वाद

पश्चात्वर्ती असम्भवता स्थायी प्रकृति की होनी चाहिए– धारा 56 में नैराश्य के सिद्धान्त को लागू करने हेतु यह आवश्यक है कि पश्चात्वर्ती असम्भाव्यता अस्थायी प्रकृति की न होकर स्थायी प्रकृति की रही हो।

सत्यव्रत घोप बनाम मंगनीराम बॉगुर ए0 आई0 आर0 1954 सु0 को 044 के वाद में प्रतिवादी कम्पनी ने कुछ भूखण्डों को विकसित किया । प्रतिवादी द्वारा भूखण्डों को विकसित करने से पूर्व उसे द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान सैनिक उददेश्य से अधिग्रहीत कर लिया गया। कम्पनी ने पश्चात्वर्ती असम्भाव्यता के कारण संविदा के पालन की असम्भवता के आधार पर दायित्व से मुक्ति मॉगी। न्यायालय ने प्रतिवादी के इस तर्क को अस्वीकार करते हुए निर्णय दिया कि चूँकि भूखण्ड युद्ध के दौरान सैनिक उददेश्य से अधिग्रहीत किया गया था अतः यह अधिग्रहण अस्थायी था। यहॉ यह तो कहा जा सकता था कि संविदा के पालन असम्भव हो गया। चूँकि संविदा के पालन के लिए कोई अवधि निर्धारित नहीं थी अतः संविदा के पालन के नैराश्य असम्भवता के आधार पर प्रतिवादी को संविदा पालन से मुक्ति प्रदान नहीं की जा सकती।

पश्चात्वर्ती विधिक परिवर्तन– यदि संविदा करते समय यंविदा का पालन विधि सम्मत है परन्तु संविदा के पालन की तिथि को संविदा के अन्तर्गत किया जाने वाला कार्य विधि–विरूद्ध हो जाय तो भी यह कहा जाता है कि संविदा के पालन की असम्भवता के आधार पर संविदा का उददेश्य विफल हो गया।

क,ख से संविदा करता है कि वह ख के लिए एक विदेशी पत्तन पर स्थोरा भरेगा। क की सरकार उस देश के विरूद्ध युद्ध की घोषणा करती है जहॉ पत्तन स्थित है। ऐसी स्थिति में क द्वारा उस पत्तन से स्थोरा भरना असम्भव हो गया तथा संविदा शून्य हो गयी।

Question 8. **कल्प संविदा से आप क्या समझते है? कल्प संविदा के प्रकारों का वर्णन करते हुए, उन परिस्थितियों का वर्णन कीजिए। जिसमें कल्प संविदात्मक दायित्व उत्पन्न होते है।**

Answer. कल्प संविदा या अर्द्ध–संविदा (Quasi-contract)– कोई भी संविदा करने के लिए प्रस्ताव, स्वीकृति, प्रतिफल आदि की आवश्यकता रहती है। किन्तु कुछ सम्बन्ध ऐसे होते हैं जिनमें न तो प्रस्ताव रखा जाता है और न ही स्वीकृति दी जाती है, फिर भी उसे संविदा के समरूप माना जाता है। यद्यपि भारतीय संविदा अधिनियम में कल्प या अर्द्ध संविदा शब्द

का उपयोग नहीं किया गया है, फिर भी धारा 68 से 72 में कुछ ऐसे सम्बन्ध बनाये गये हैं जो संविदा से मिलते–जुलते है?

विनफील्ड के अनुसार कुछ सम्बन्ध येसे उत्पन्न हो जाते हैं जिनमें एक व्यक्ति दूसरे से अनुचित लाभ उठा लेता है तो साम्या के सिद्धान्त के अनुसार दूसरे व्यक्ति को भी उपचार मिलना चाहिए। चूँकि ऐसे सम्बन्ध संविदा से मिलते– जुलते होते हैं इसलिए इन्हें कल्पा या अर्द्ध संविदा के नाम से पुकार जाता है पोलक ऐसी संविदाओं को विवक्षित संविदा कहना पसन्द करते हैं। कल्प–संविदा का महत्व संविदा के बराबर ही होता है।

धारा 68 से 72 में 5 प्रकार की संविदा से मिलते–जुलते सम्बन्ध अर्थात् कल्प–संविदाओं का वर्णन किया गया है–

1. किसी असक्षम की आवश्यकता की पूर्ति करनाः (धारा 68)
2. हित रखने वाले व्यक्ति द्वारा दूसरे द्वारा देय धन का भुगतान करनाः (धारा 69)
3. बिना शुल्क के कार्य का फायदा उठानाः(धारा 70)
4. खोई हुई वस्तुओं को पाने वाले की जिम्मेदारीः(धारा 71)
5. भूल या उत्पीडन द्वारा प्राप्त की गई वस्तु के बारे में।ः(धारा 72)

संविदा की शर्त से अधिक दी गयी धनराशि धारा 72 के अर्थो में भूल कहलायेगी। **बोर्ड ऑफ ट्रस्टी बनाम अशोक ली लैण्ड , ए0 आई0 आर0 1992 केरल**

नगरपालिका कानपुर बनाम श्री राम महादेव, ए0 आई0 आर0 :(1991)

एस0सी0 281 के वाद में नगरपालिका को सीमा–कर का भुगतान विधि के भूल के अन्तर्गत कर दिया गया । भुगतान करने वाला उसे वापस प्राप्त कर सकता है।

<u>कल्प–संविदा की मान्यता तथा प्रवर्तन का (आधार) कारण–</u> जैसा कि ऊपर कहा गया है कल्प संविदाएॅ जो कुछ परिस्थितियों तथा कुछ सम्बन्धों के अन्तर्गत संविदा न होते हुए भी संविदा न होते हुए भी संविदा मान ली जाती है, इसके पीछे दो कारण है–

1. नैसर्गिक न्याय तथा साम्या
2. अन्यायपूर्ण लाभ प्राप्त करने से रोकना।

कल्प संविदा में संविदा करने के आशय का लिखित या विवक्षित रूप से अभाव रहता है तथा यह किन्ही सम्बन्धों में संविदा अधिनियम की धारा 68 से 72 तक में वर्णित पॉच परिस्थितियों में ही मान्य तथा प्रवर्तित की जा सकती हैं।

<u>Question 9.</u> व्यादेश क्या है? कब एक अस्थायी व्यादेश पारित किया जाता है? अस्थायी व्यादेश और शाश्वत व्यादेश में अन्तर बताइये।

<u>Answer .</u> व्यादेश न्यायालय का एक विशिष्ट आदेश है जिसके द्वारा आशंकित अपकृत्य करने पर प्रतिबन्ध लगाया जाता है या यदि अपकृत्य प्रारम्भ हो गया है तो उसे जारी रखने को प्रतिबन्धित किया जाता है तथा कुछ मामलों में जहॉ इसे आज्ञात्मक व्यादेश कहा जाता है, इसके अन्तर्गत न्यायालय यथास्थिति के सक्रियात्मक स्थापन की आज्ञा देता है। **बार्न** के शब्द कोष में व्यादेश को एक ऐसी विधिक प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया गया है, जिसके अन्तर्गत किसी ऐसे व्यक्ति को एक ऐसे अपकृत्यपूर्ण कार्य प्रारम्भ करने या उसे जारी रखने से रोका जाता है, जिसके द्वारा उस व्यक्ति ने किसी के विधिक अधिकारों पर आक्रमण किया है, जिसके द्वारा उस व्यक्ति ने किसी के विधिक अधिकारों पर आक्रमण किया है या आक्रमण करने जा रहा है। लार्ड हेल्सबरी व्यादेश की परिभाषा को स्पष्ट करते हुए कहते हैं, "व्यादेश एक ऐसी विधिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा एक पक्षकार को एक विशिष्ट कार्य करने या उसे करते रहने पर प्रतिबन्ध लगाया जाता है।" पुराने चान्सरी व्यवहार में व्यादेश एक ऐसी साम्यापूर्ण निषेधात्मक याचिका थी जिसके द्वारा एक व्यक्ति को अपने ऐसे विधिक अधिकारों को प्रयोग करने से प्रतिबन्धित किया जाता था, जो साम्या तथा अन्तःकरण के प्रतिकूल होता है।

<u>व्यादेश के लक्षण **(Characteristics of injunction)-**</u>

1. यह एक न्यायिक प्रकिया है
2. इसका उददेश्य प्रतिबन्ध या प्रतिषेध है।
3. जिसे प्रतिबन्धित या निषेधित किया जाता है वह एक अपकृत्यपूर्ण कार्य है।
4. एक व्यादेश व्यक्तियों को प्रतिबन्धित करता है, प्रभावित करता है तथा भूमि के साथ जुडा नहीं होता।

<u>व्यादेश के प्रकार–</u> व्यादेश,सामान्य या विशिष्ट हो सकता है। व्यादेश स्थायी या अस्थायी तथा निषेधात्मक या समादेशात्मक हो सकता है।

व्यादेश **(Injunction)**

समयावधि के आधार पर

1.अस्थायी 2.स्थायी

प्रकृति के आधार पर

1. निषेधात्मक 2. आज्ञात्मक या समादेशात्मक

व्यादेश जारी करने का सामान्य सिद्धान्त **(Genral principle in granting Injunction)-** व्यादेश जारी करने का उददेश्य सम्पत्ति से सम्बन्धित अधिकार को सुरक्षा प्रदान करना, किसी दायित्व का प्रवर्तन कराना तथा किसी अपकृत्य को रोकना है । यह सिद्धान्त सकारात्मक तथा नकारात्मक होता है।

व्यादेश जारी करने के पीछे सिद्धान्त यह है कि किसी पक्षकार के कार्यों द्वारा किसी अन्य पक्षकार को होने वाली अपूरणीय क्षति को व्यादेश जारी करके रोका जाए। यदि किसी के कार्य करने से कार्य करने से प्रविरत रहने से, अन्य व्यक्ति को अपूरणीय क्षति होने की सम्भावना है तो उस व्यक्ति को ऐसा कृत्य करने से रोका जाए या ऐसा कृत्य करने के लिए बाध्य किया जाय।

<u>स्थायी (शाश्वत)व्यादेश</u> <u>अस्थायी व्यादेश</u>

1. स्थायी व्यादेश न्यायालय द्वारा तब 1.अस्थायी व्यादेश वाद प्रस्तुत
करने के प्रदान किया जाता है जब पक्षकार पश्चात् किसी भी समय,
वाद के किसी अपना अधिकार सिद्ध कर देता है भी प्रक्रम पर जारी
किया जा सकता है

2. स्थायी व्यादेश आज्ञप्ति द्वारा पारित 2.अस्थायी व्यादेश न्यायालय के आदेश
किया जाता है। द्वारा पारित किया जाता है।

3.स्थायी व्यादेश का प्रभाव शाश्वत होता 3.अस्थायी व्यादेश का प्रभाव वाद के
है। अन्तिम निर्णय के होने तक ही रहता है

4.स्थायी व्यादेश वाद के अन्तिम निर्णय 4. अस्थायी व्यादेश वाद के दौरान

हो जाने पर जारी किया जा सकता है।	अन्तिम निर्णय के पूर्व जारी किया जा सकता है।

<u>Question 10.</u> Distinguish between

(क) अन्तर बताइये–

1. शून्यकरणीय और शून्य संविदा में अन्तर –

1. प्रवर्तन की दृष्टि से– शून्यकरणीय संविदा किसी एक के विकल्प पर प्रवर्तनीय होती है। जबकि शून्य संविदा किसी भी पक्षकार द्वारा प्रवर्तित नहीं कराई जा सकती।

2. विधिक महत्व की दृष्टि से – शून्यकरणीय संविदा तब तक विधिमान्य होती है जब तक पक्षकार द्वारा विखण्डित नहीं कर दी जाती है। जबकि शून्य संविदा प्रभाव रहित होती है। इसका कोई विधिक महत्व नहीं होता है।

3. साक्ष्य की आवश्यकता की दृष्टि से– शून्यकरणीय संविदा सामान्य तौर पर मान्य संविदा होती हैं उसको रदद् करने के लिए पक्षकार को यह साबित करना पड़ता है कि वह किस आधार पर संविदा को रदद् कर रहा है। जबकि शून्य संविदा सामान्य तौर पर शून्य ही होती हैं और उसको निरस्त करने के लिए किसी साक्ष्य की आवश्यकता नहीं होती ।

4. **तृतीय व्यक्ति का हक–** शून्यकरणीय संविदा रदद् होने के पूर्व तृतीय व्यक्ति द्वारा सद्भावपूर्वक संविदा में हक प्राप्त कर सकता है। जब कि शून्य संविदा में किसी तृतीय व्यक्ति को कोई हक नहीं होता है।